ISSN: 3107-3557(Online)
The Knowledge Spectrum - An International Peer-Reviewed Multidisciplinary Journal

वैदिक संस्कृति में पर्यावरण का माहात्म्य

Shivam K. Dave
Research Scholar in Sanskrit
Saurashtra University Rajkot

भारतीय वैदिक संस्कृति का एक अद्वितीय स्थान रहा है । हमारे भारत वर्ष में सबसे बड़ा महत्त्व पर्यावरण का है, क्योंकि हम सबका जीवन ही पर्यावरण पर आधारित है । यदि सभी ओर से देखें तो पर्यावरण का सरंक्षण और संवर्धन करना हमारा परम कर्तव्य है। वेदों में पर्यावरण रक्षा विषयक उल्लेख पर्याप्त मात्रा में प्राप्त होते हैं । यद्यपि वैदिक युग में पर्यावरण प्रदूषण की समस्या का नितान्त अभाव था, तथापि क्रान्तदर्शी वैदिक ऋषियों का इस ओर पर्याप्त ध्यान था । वर्तमान में पर्यावरण की समस्या भारत में विशेष रूप से विकराल रूप धारण कर चूकी है । वैदिक ऋषियों को इस समस्या के भयंकर रूप धारण करने का पहले ही ज्ञान था, अतःएव वैदिक संहिताओं में तथा वैदिक साहित्य में इस समस्या के निवारण का यत्र-तत्र विशेष उल्लेख मिलता है ।

मनुष्य द्वारा प्रकृति- पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु एवं आकाश से जब अनुचित तथा अत्यधिक मात्रा में छेड़खानी या मलिनीकरण होता है, तब प्रदूषण की समस्या का आरम्भ होता है । इस समस्या की उत्पत्ति का सबसे बड़ा कारण जनसंख्या में अत्यधिक वृद्धि है। जनसंख्या में वृद्धि से वनभूमि का नगरीकरण, जंगलों के वृक्षों का नाश, प्राकृतिक जलस्रोतों का दूषित होना, प्राणवायु की न्यूनता, जगह-जगह गन्दगी का फैलना, गमनागमन के आधुनिक साधनों द्वारा अत्यधिक मात्रा में धूमवमन तथा उद्योगों द्वारा बेरोक-टोक जलवायु का प्रदर्शित करना आदि अनेक कारण आधुनिक काल में पर्यावरण प्रदूषण के जनक हैं।[1]

आज के समय में वातावरण के प्रदूषण के साथ ही ध्वनि- प्रदूषण भी बढ़ता जा रहा है । इन सब प्रकार के प्रदूषणों से बचने के लिए वेदों में विविध प्रकार के उपाय प्रदर्शित हैं । यदि हम इनसे बचना चाहते हैं तो हमें वेदों में प्रतिपादित उपायों को अपनाना होगा । वैदिक युग में मानव जीवन के हितार्थ पर्यावरण की रक्षा, प्रकृति से निकटता तथा घर में अग्निहोत्र की परमावश्यक व्यवस्था थी । वेदों में प्रकृति के विभिन्न रूपों को देवता माना गया है । प्रकृति के इन रूपों की पूजा एवं सत्कार का विधान है । पृथ्वी, जल, (नदियों के रूप में), वायु आकाश और तेज (सूर्य, चन्द्र, नक्षत्र मण्डल तथा उषा आदि रूप), वनस्पति, पर्वत और षड्ऋतुओ आदि प्रायः प्रकृति के सभी रूपों का देवता स्वीकारा गया तथा इन सभी को पूजा जाता था । ऋतुओं के क्रम को तथा ऋतुओं की प्रक्रिया को अथर्ववेद में यज्ञ की संज्ञा दी गई है । 'स यज्ञियो यजति यज्ञियाँ ऋतून्' ।[2] प्रकृति के अनवरत यज्ञ के साथ घर-घर में हवन करने का विधान है । यदि प्रत्येक ऋतु में प्रतिदिन यज्ञ, हवन का आयोजन हो, जिसमे सुगन्धित तथा औषधिय गुणोंवाले द्रव्यों की घृत के साथ आहुति दी जाए, तो प्रदूषण आज भी निष्प्रभावी बनाया जा सकता है । अथर्ववेद में जल, वायु तथा वनस्पति पर पर्यावरण की शुद्धि तथा सुरक्षा निर्भर है - ऐसा कहा गया है इन तीनों की शुद्धि एवं संतुलन से प्रदूषण की समस्या स्वतः समाप्त हो जाएगी –

त्रीणि च्छन्दासिं कवयो वि येतिरे पुरुरूपं दर्शतं
विश्वचक्षणम् ।
आपो वाता औषधयस्तान्येकस्मिन् भुवन आपितानि।।[3]

उपर्युक्त मन्त्र में औषधि शब्द का अर्थ वनस्पति वृक्ष लतादि है । अतः जल, वायु और वनस्पति को शुद्ध एवं सुरक्षित रखने से ही पर्यावरण की शुद्धि एवं सुरक्षा सम्भव है । एतदर्थ वनों का समुचित मात्रा में

सुरक्षित रहना परमावश्यक है । मानवजीवन के लिए वनों और उद्यानों में पशु-पक्षिओं की जीवनरक्षा भी अपेक्षित है । उसके फलस्वरूप वातावरण की शुद्धि से स्वस्थ जीवन सम्भव होगा । अतः भारतीय संस्कृति में तपोवनों का महत्त्वपूर्ण स्थान है । तपोवनों में जहाँ वृक्ष-लतादि प्रफुल्लित एवं विकसित होते थे, वहाँ यज्ञ हवानादि की प्रक्रिया भी निरन्तर चलती थी । मासिक और वार्षिक यज्ञों के साथ हवन प्रतिदिन होता था । इस प्रकार तपोवनों का पर्यावरण रक्षा में पर्यावरण का महत्त्वपूर्ण योगदान था ।

पर्यावरण शुद्धि में जल का अपना महत्त्व है । जल न केवल हमारे पीने के काम आता है, अपितु अन्न, वनस्पति आदि की उपज का भी यही मुख्य कारण है। अतः जल जीवन के लिए परमोपयोगी एवं परमावश्यक तत्त्व है । अशुद्ध जल मानव मात्र के लिए कष्टों तथा घातक रोंगों का कारण तो है ही, अन्न एवं वृक्षादि के लिए भी नाशक सिद्ध होगा । अतः ऋग्वेद में शुद्ध जल को रोगों की औषधि तथा अमृततुल्य कहा है यथा-

अप्सु मे सोमो अब्रवीदन्तर्विश्वानि भेषजा ।
अग्निं च विश्व वशंभुवमापश्च विश्वभेषजीः ।।
आप इद् वा उ भेषजीरापो अमीवचातनीः ।
आप सर्वस्य भेषजीस्तास्ते कृण्वन्तु भेषजम् ।।
अप्स्वनन्तरमृतम्, अप्सु भेषजम् ।।[4]

शुद्ध जल को कृषि वनस्पति और औषधियों के लिए परमावश्यक कहा गया है । ऋग्वेद की एक ऋचा के अनुसार-"तस्मा अरं गमाम वो यस्य क्षयाय जिन्वथः । आपो जनयथा च नः ।।" (ऋग्वेद १०.९.३) यजुर्वेद में तो पूरी प्रकृति का संरक्षण, परिपालन, सन्तुलन बनाए रखे तथा प्रकृति को किसी प्रकार की हानि न पहुँचाने की बात आदेशात्मक रूप में स्पष्ट प्रतिपादित है । वहाँ यह भी कहा गया है कि वनस्पति सौ गुना पुष्पित पल्लवित होकर हमें हजार गुणा लाभान्वित करेगी ।

द्या मां लेखीरन्त्रिक्षं मा हिंसीः पृथिव्यासम्भवः ।
अयं हि त्वा स्वाधितिस्तेतिजानः प्रणिनाय महते
सौभगाय ।
अतस्त्वं देव वनस्पते शतवल्शो विरोह
सहस्त्रवल्शा वि वयं रुहेम ।।[5]

'अथर्ववेद' में जल को शुद्ध रखने और शुद्ध जल से परिपूर्ण सरोवर को घर में समीप निर्मित करने का आदेश स्पष्ट रूप में प्राप्त होता है-

इमा आप प्र भराभ्ययक्ष्मा यक्ष्मनाषनीः ।
गृहानुप प्र सिदाम्यमृतेन सहाग्निना ।।[6]

उपर्युक्त वैदिक संहिताओं के मन्त्रों में जहाँ प्रकृति के परिपालन, रक्षा तथा इसे हानि न पहुँचाने की बात कही गई है; वहाँ प्रकृति की रक्षा के साथ मानवमात्र के सर्वतोमुखी विकाश को भी प्रमुख स्थान दिया गया है । अर्थात् मानव की प्रगति, कल्याण तथा आरोग्य को प्रकृति की रक्षा तथा वृद्धि के साथ जोड़ा गया है । यदि प्रकृति का संरक्षण एवं संवर्धन होगा तभी मानव का भी संरक्षण एवं संवर्धन होगा । प्रकृति की सुरक्षा और शुद्धि के साथ निश्चय ही मानव की सुरक्षा एवं समृद्धि का समवाय सम्बन्ध है, आधाराधेय भाव सम्बन्ध है । मानव जीवन का आधार है प्रकृति का संतुलन एवं संरक्षण अतः इस तथ्य को उपेक्षित नहीं करना चाहिए ।

जल के साथ वायु की शुद्धि एवं शुद्धि की सुरक्षा भी हमारे जीवन के लिए परमावश्यक है । वायु प्राण है, प्राण के बिना जीवन सम्भव ही नहीं है । जल के बिना कतिपय दिवस बिताए जा सकते हैं । वायु के बिना तो कतिपय पल भी नहीं बिताए जा सकते । ऋग्वेद में वायु को 'अमृत का कोष' कहा गया । वायु को सब रोगों की एकमात्र औषधि बताया गया है ।

यददो वात ते गृहेअमृतस्य निर्धिहितः । ततो नो देहि जीवसे ।।

उक्त मन्त्र में शुद्ध वायु को औषध, आरोग्यवर्धक, सर्वरोगहर एवं दीर्घायु प्रदान करने वाला बताया गया है । अतः इसका संरक्षण परमावश्यक है; एसा तभी सम्भव है, जब हम शुद्धि को क्रिया कलाप में सर्वोच्च प्राथमिकता दे । 'यजुर्वेद' के मन्त्र में भी वायु को शुद्ध रखने तथा आकाश में किसी प्रकार की कुचेष्टा करके इसे प्रदूषित न करने का भाव व्यक्त किया है ।

इसके अतिरिक्त भूमि, अन्न तथा वनस्पतियों की रक्षा एवं शुद्धि का भी वर्णन वेदों में मिलता है । भूमि को वेदों में माता तथा देवता माना गया है । पृथ्वी की पूजा का भी विधान है । जो पूज्य हो, माता तथा देवता हो, उसे मलिन करने की धृष्टता कौन कर सकता है ? 'यजुर्वेद' के मन्त्र ५.४३ में 'पृथिव्या सम्भव' कहकर 'अथर्ववेद' के पृथ्वीसूक्त १२.१ के ६३ मन्त्रों में और अन्य अनेक स्थलों पर देखने मिलता है–

माताः भूमिः पुत्रो अहं पृथ्व्याः ।
पर्जन्य पिता स उ नः पिपर्तु ।।[7]

पृथ्वी को माता और पर्जन्य मेघ को पिता कहा गया है । पृथ्वीसूक्त में ही सुरभित होने तथा स्वयं के पृथ्वी के समान सुरभित-सुगन्धित होने की कामना की गई है । वैदिक काल में भूमि को माता, स्वयं को इसका पुत्र, अंतरिक्ष में स्थित पर्जन्य मेघ को पिता मानने वाले भारतीय जन धरा को अथवा आकाश को अपवित्र करने की कल्पना भी नहीं कर सकते थे । आज धरा को हमने कितना दूषित-प्रदूषित कर दिया है । आकाश को दूषित वायु से भर दिया है । इस समस्या का समाधान केवल जनसंख्या पर नियन्त्रण तथा मलिन द्रव्यों के उत्सर्जन पर पूर्ण प्रतिबन्ध और हवन का प्रचार एवं समाज में इसके अधिकाधिक प्रयोग द्वारा ही सम्भव है । इस प्रकार हम समाज को स्वस्थ और सुखी बना सकते हैं । पृथ्वी एवं जलवायु के शुद्ध होने पर ही वनस्पति, औषधियाँ, अन्न तथा वन आदि खाद्य पदार्थ स्वास्थ्य तथा आरोग्य प्रद हो सकते हैं । 'अथर्ववेद' में स्वच्छ भूमि तथा स्वच्छ वातावरण आदि को 'विश्वभेषजी' जैसे मानद विशेषणों से संबोधित किया गया है ।

यावतिषु मनुष्या भेषजं भिषजो विदुः ।
तवतीर्विश्वभेषजीरा भरामि त्वामभि ।।
पुष्पवतीः प्रसुमतिः फ़लिनिरफ़ला उत ।
समान्तर इव दुर्हा़मस्मा अरिष्टतातये ।।[8]

शुद्ध भूमि में उपजी, शुद्ध पानी से सिंचित तथा शुद्ध वातावरण में पनपी वनस्पति पर्यावरण को शुद्ध और सुगन्धित बना देती है और दोषों को नष्ट कर देती है । वनस्पतियाँ प्राणीमात्र को जीवनशक्ति प्रदान कराती है ।

वेदों में अश्वस्थ वृक्ष (पीपल का पेड़) का बहुत महत्त्व प्रदर्शित है । यह अहोरात्र प्राणवायु प्रदान करता है । यह पेड़ पुंसवनकारक होने के साथ परम आरोग्यकर भी है । इसमें देवों का निवास बताया गया है । काश्मर्य, (गम्भारी) गुल्गुलु (गुग्गल) को वातावरणशोधक, पर्यावरणरक्षक तथा स्वास्थ्यसंवर्धक स्वीकार किया गया है ।[9]

अस्वस्थो देवसदनस्तुतीयस्यामितो दिवि ।।
शमि अश्वस्थमारुढस्तत्र पुंसवनं कृतम् ।।
न तं यक्ष्मा अरुन्ध्यते नैनं शपथो अश्नुते ।
यं भेषजस्य गुल्गुलोः सुरभिर्गन्धोअशनुते ।।
काश्मर्यमयाः परिधयो भवन्ति रक्षसामपहत्यै।।

- कृष्णयजुर्वेद (मैत्रायणी शाखा ३.७.९)

पर्यावरण रक्षा के विषय में अथर्ववेद का शान्तिसूक्त हमें दृष्टिगोचर होता है । प्रत्येक पूजा-पाठ के पूर्व हम कहते हैं कि पृथ्वी हमें शान्ति दे, अंतरिक्ष जल. औषधियाँ और वनस्पतियाँ सभी शान्ति दे अर्थात्

इनमें व्यतिक्रम न हो । अथर्ववेद में कामना कि गई है कि वर्षाजल हमें सुख दे 'शिवा नः शन्तु वार्षिकिः' । यही नहीं, 'ऋग्वेद' के सप्तम् मण्डल के १००, १०१ सूक्त 'पर्जन्य सूक्त' की ऋचाओं द्वारा शीघ्र ही अनावृष्टि दूरकर वनस्पतियों और औषधियों का सम्वर्धन करानेवाली, दुर्भिक्ष दूर करनेवाली और सुख शान्ति प्रदायिनी वर्षा की कामना की है ।

'अथर्ववेद' के १२ वें काण्ड के प्रथम सूक्त के ६३ मन्त्र 'पृथ्वीसूक्त' तथा तीसरे काण्ड का 'कृषसूक्त' भूमि और कृषि की महनीयता का दिग्दर्शन करता है यथा - 'नाना वीर्या औषधिर्या बिभर्ति पृथ्वी नः प्रधतां राध्यान' । अर्थात् नाना औषधि वाली पृथ्वी मेरे लिए विस्तृत एवं समृद्ध हो । आगे कहा गया है कि हे पृथ्वी ! तुम्हारे गिरी-पर्वत हिमाच्छादित हों, वन सुखदायी हो, विभिन्न रंगोंवाली, भूमि पर मैं अपराजित, अनाक्रान्त और अक्षत होकर रहूँ । 'अथर्ववेद' ६.७१.०३ में कामना की गई है कि अन्न मेरे लिए स्वादिष्ट एवं कल्याणकारी हो । 'शिवं मह्यं मधुमदस्तवन्नम्' ।[10]

मानव एवं पर्यावरण के मध्य अटूट सम्बन्ध पुरातन काल से है । पर्यावरण के साथ यह सम्बन्ध जीवन मूल्य पर आधारित रहा है । मानव में प्रकृति के प्रति अनुराग इतना अधिक है कि उससे अलग अस्तित्व की कल्पना नहीं की जा सकती और इसी भावात्मक जुड़ाव का वर्णन वेदों में है । वेदों के वर्णन इस बात की ओर इंगित करते हैं कि हमारे मनीषियों ने समूची प्रकृति को देवतुल्य मानकर उसकी रक्षा हेतु विभिन्न विधान रचे । ऋषियों ने प्राकृतिक संतुलन को बनाए रखने को जन सामान्य की धार्मिक आवश्यकता बताई। यजुर्वेद में तो यत्र-तत्र पर्यावरण रक्षा के भाव दृष्टि गोचर होते हैं ।[11]

निष्कर्ष :

हमारे मनीषियों ने पर्यावरण शुद्धिकरण के लिए शान्ति मन्त्र से पर्यावरण घटकों का स्तवन किया है । भाव यह है कि हमारे लिए आकाश, अंतरिक्ष, पृथ्वी, जल, औषधि, वनस्पति या विश्वदेव तथा ब्रह्म यह सभी शान्ति प्रदान करने वाले हो, चारों ओर शान्ति हो । इस शान्ति पाठ में पर्यावरण संतुलन को बनाए रखने हेतु ऋषियों द्वारा प्रार्थना की गई है, जिससे स्पष्ट होता है कि वैदिक ऋषि पर्यावरण के प्रत्येक रूप की रक्षा एवं संतुलन के प्रति कितने सजग थे। उन्होंने जन सामान्य में श्रद्धा भाव जागृत कर प्रकृति के सभी रूपों को अशान्त अर्थात् आज के परिपेक्ष में प्रदूषण न करने की प्रेरणा दी साथ ही साथ जीवन के प्रति संकट न रहे इसके लिए प्रदूषण के प्रति सजग रहने की प्रेरणा भी दी है ।

संदर्भ संकेत :

1) सं. लक्कड़ प्रेमप्रकाश, भट्टी प्रो. श्रीदेवदत्तजी, पर्यावरण अंक, 'वेदों में पर्यावरण रक्षा', गीताप्रेस गोरखपुर, जनवरी २०२५, पृ.१३८
2) शर्मा डॉ. गंगा सहाय, अथर्ववेद १८/०१/१८ संस्कृत साहित्य प्रकाशन
3) वही, १८/०१/१७
4) शर्मा डॉ. गंगा सहाय, ऋग्वेद १.२३.२० / ऋग्वेद १०.१३७.६ / ऋग्वेद १.२३.१९ संस्कृत साहित्य प्रकाशन
5) व्यास डॉ. रेखा - यजुर्वेद ५.४३ संस्कृत साहित्य प्रकाशन
6) शर्मा डॉ. गंगा सहाय, अथर्ववेद ३.१२.९ संस्कृत साहित्य प्रकाशन
7) अथर्ववेद १२.१.१२ The Atharva Veda : Bibek Debroy, Dipavali Debroy
8) शर्मा डॉ. गंगा सहाय, अथर्ववेद ८/७/.२६-२७ संस्कृत साहित्य प्रकाशन
9) अथर्ववेद ५.४.३ / ६.१.१.१ / १९.३८.१ The Atharva Veda : Bibek Debroy, Dipavali Debroy
10) सं.लक्कड़ प्रेमप्रकाश, भटनागर डॉ. सुश्री उषा जी 'यजुर्वेद और पर्यावरण' पर्यावरण अंक, जनवरी २०२५-गीताप्रेस गोरखपुर, जनवरी २०२५, पृ. १४३
11) सं.लक्कड़ प्रेमप्रकाश, डॉ. श्री दिनेशचन्द्र जी उपाध्याय, पर्यावरण अंक, 'वैदिक वांग्मय में पर्यावरण संरक्षण-एक विहंगम दृष्टि', गीताप्रेस गोरखपुर, जनवरी २०२५, पृ. १४२